

सम्बन्ध—अब सांसारिक भोगोंमें वैराग्यकी और परम आनन्दस्वरूप परमेश्वरको पानेकी अभिलाषा उत्पन्न करनेके लिये उपर्युक्त स्वर्गलोकके साधनरूप यज्ञादि सकाम कर्म और उनके फलरूप लौकिक एवं पारलौकिक भोगोंकी तुच्छता बतलाते हैं—

प्लवा होते अदृढा यज्ञरूपा
अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म।
एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा
जरामृत्युं ते पुनरेवापि यन्ति ॥ ७ ॥

हि=निश्चय ही; एते=ये; यज्ञरूपः=यज्ञरूप; अष्टादश प्लवाः=अठारह नौकाएँ; अदृढाः=अदृढ़ (अस्थिर) हैं; येषु=जिनमें; अवरम् कर्म=नीची श्रेणीका उपासनारहित सकाम कर्म; उक्तम्=बताया गया है; ये=जो; मूढाः=मूर्ख; एतत् [एव]=यही; श्रेयः=कल्याणका मार्ग है (यों मानकर); अभिनन्दन्ति=इसकी प्रशंसा करते हैं; ते=वे; पुनः अपि=बारम्बार; एव=निःसंदेह; जरामृत्युम्=वृद्धावस्था और मृत्युको; यन्ति=प्राप्त होते रहते हैं ॥ ७ ॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें यज्ञको नौकाका रूप दिया गया है और उनकी संख्या अठारह बतलायी गयी है; इससे अनुमान होता है कि नित्य, दर्श, पौर्णमास, चातुर्मास्य आदि भेदोंसे यज्ञके अठारह प्रधान भेद होते हैं। कहना यह है कि जिनमें उपासनारहित सकाम कर्मोंका वर्णन है, ऐसी ये यज्ञरूप अठारह नौकाएँ हैं, जो कि दृढ़ नहीं हैं। इनके द्वारा संसार-समुद्रसे पार होना तो दूर रहा, इस लोकके वर्तमान दुःखरूप छोटी-सी नदीसे पार होकर स्वर्गतक पहुँचनेमें भी संदेह है; क्योंकि तीसरे मन्त्रके वर्णनानुसार किसी भी अङ्गकी कमी रह जानेपर वे साधकको स्वर्गमें नहीं पहुँचा सकतीं, बीचमें ही छिन्न-भिन्न हो जाती हैं। इसलिये ये अदृढ़ अर्थात् अस्थिर हैं। इस रहस्यको न समझकर जो मूर्खलोग इन सकाम कर्मोंको ही कल्याणका उपाय समझकर—इनके ही

फलको परम सुख मानकर इनकी प्रशंसा करते रहते हैं, उन्हें निःसंदेह बारम्बार वृद्धावस्था और मरणके दुःख भोगने पड़ते हैं॥७॥

सम्बन्ध—वे किस प्रकार दुःख भोगते हैं, इसका स्पष्टीकरण करते हैं—

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयंधीराः पण्डितं मन्यमानाः ।

जड्जन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्थाः ॥८॥

अविद्यायाम् अन्तरे=अविद्याके भीतर; वर्तमानाः=स्थित होकर (भी); स्वयंधीराः=अपने-आप बुद्धिमान् बननेवाले (और); पण्डितम् मन्यमानाः=अपनेको विद्वान् माननेवाले; मूढाः=वे मूर्खलोग; जड्जन्यमानाः=बार-बार आघात (कष्ट) सहन करते हुए; परियन्ति=(ठीक वैसे ही) भटकते रहते हैं; यथा=जैसे; अन्धेन एव=अंधेके द्वारा ही; नीयमानाः=चलाये जानेवाले; अन्थाः=अंधे (अपने लक्ष्यतक न पहुँचकर बीचमें ही इधर-उधर भटकते और कष्ट भोगते रहते हैं) ॥८॥*

व्याख्या—जब अंधे मनुष्यको मार्ग दिखानेवाला भी अंधा ही मिल जाता है, तब जैसे वह अपने अभीष्ट स्थानपर नहीं पहुँच पाता, बीचमें ही ठोकरें खाता भटकता है और काँटे-कंकड़ोंसे बिंधकर या गहरे गड्ढे आदिमें गिरकर अथवा किसी चट्टान, दीवाल और पशु आदिसे टकराकर नाना प्रकारके कष्ट भोगता है, वैसे ही उन मूर्खोंको भी पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि विविध दुःखपूर्ण योनियोंमें एवं नरकादिमें प्रवेश करके अनन्त जन्मोंतक अनन्त यन्त्रणाओंका भोग करना पड़ता है, जो अपने-आपको ही बुद्धिमान् और विद्वान् समझते हैं; विद्या-बुद्धिके मिथ्याभिमानमें शास्त्र और महापुरुषोंके वचनोंकी कुछ भी परवा न करके उनकी अवहेलना करते हैं और प्रत्यक्ष सुखरूप प्रतीत होनेवाले भोगोंका भोग करनेमें तथा उनके उपायभूत अविद्यामय सकाम कर्मोंमें ही निरन्तर संलग्न रहकर मनुष्यजीवनका अमूल्य समय व्यर्थ नष्ट करते रहते हैं॥८॥

* यह मन्त्र कठोपनिषद्‌में भी आया है (क० उ० १। २। ५)।

सम्बन्ध—वे लोग बारम्बार दुःखोंमें पड़कर भी चेतते क्यों नहीं, कल्याणके लिये चेष्टा क्यों नहीं करते, इस जिज्ञासापर कहते हैं—

अविद्यायां बहुधा वर्तमाना
 वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः ।
 यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्
 तेनातुराः क्षीणलोकाश्चयवन्ते ॥ ९ ॥

बालाः=वे मूर्खलोग; अविद्यायाम्=उपासनारहित सकाम कर्मोंमें; बहुधा=बहुत प्रकारसे; वर्तमानाः=वर्तते हुए; वयम्=हम; कृतार्थाः=कृतार्थ हो गये; इति अभिमन्यन्ति=ऐसा अभिमान कर लेते हैं; यत्=क्योंकि; कर्मिणः= वे सकाम कर्म करनेवाले लोग; रागात्=विषयोंकी आसक्तिके कारण; न प्रवेदयन्ति=कल्याणके मार्गको नहीं जान पाते; तेन=इस कारण; आतुराः=बारम्बार दुःखसे आतुर हो; क्षीणलोकाः=पुण्योपार्जित लोकोंसे हटाये जाकर; च्यवन्ते=नीचे गिर जाते हैं ॥ ९ ॥

व्याख्या—पूर्वमन्त्रमें कहे हुए प्रकारसे जो इस लोक और परलोकके भोगोंकी प्राप्तिके लिये सांसारिक उन्नतिके साधनरूप नाना प्रकारके सकाम कर्मोंमें ही बहुत प्रकारसे लगे रहते हैं, वे अविद्यामें निमग्न अज्ञानी मनुष्य समझते हैं कि ‘हमने अपने कर्तव्यका पालन कर लिया।’ उन सांसारिक कर्मोंमें लगे हुए मनुष्योंकी भोगोंमें अत्यन्त आसक्ति होती है, इस कारण वे सांसारिक उन्नतिके सिवा कल्याणकी ओर दृष्टि ही नहीं डालते। उन्हें इस बातका पता ही नहीं रहता कि परमानन्दके समुद्र कोई परमात्मा हैं और मनुष्य उन्हें पा सकता है। इसलिये वे उन परमेश्वरकी प्राप्तिके लिये चेष्टा न करके बारम्बार दुःखी होते रहते हैं और पुण्यकर्मोंका फल पूरा होनेपर वे स्वर्गादि लोकोंसे नीचे गिर जाते हैं ॥ ९ ॥

सम्बन्ध—ऊपर कही हुई बातको ही और भी स्पष्ट करते हैं—

इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः ।
 नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति ॥ १० ॥

इष्टापूर्तम्=इष्ट और पूर्त* (सकाम) कर्मोंको ही; वरिष्ठम्=श्रेष्ठ; मन्यमानः=माननेवाले; प्रमूढः=अत्यन्त मूर्खलोग; अन्यत्=उससे भिन्न; श्रेयः=वास्तविक श्रेयको; न वेदयन्ते=नहीं जानते; ते=वे; सुकृते=पुण्यकर्मोंके फलस्वरूप; नाकस्य पृष्ठे=स्वर्गके उच्चतम स्थानमें; अनुभूत्वा=(जाकर श्रेष्ठ कर्मोंके फलस्वरूप) वहाँके भोगोंका अनुभव करके; इमम् लोकम्=इस मनुष्यलोकमें; वा=अथवा; हीनतरम्=इससे भी अत्यन्त हीन योनियोंमें; विशन्ति=प्रवेश करते हैं॥ १० ॥

व्याख्या—वे अतिशय मूर्ख भोगासक मनुष्य इष्ट और पूर्तको अर्थात् वेद और स्मृति आदि शास्त्रोंमें सांसारिक सुखोंकी प्राप्तिके जितने भी साधन बताये गये हैं, उन्हींको सर्वश्रेष्ठ कल्याण-साधन मानते हैं। इसलिये उनसे भिन्न अर्थात् परमेश्वरका भजन, ध्यान और निष्कामभावसे कर्तव्यपालन करना एवं परमपुरुष परमात्माको जाननेके लिये तीव्र जिज्ञासापूर्वक चेष्टा करना आदि जितने भी परम कल्याणके साधन हैं, उन्हें वे नहीं जानते, उन कल्याण-साधनोंकी ओर लक्ष्यतक नहीं करते। अतः वे अपने पुण्यकर्मोंके फलरूप स्वर्गलोकतकके सुखोंको भोगकर पुण्य क्षय होनेपर पुनः इस मनुष्यलोकमें अथवा इससे भी नीची शूकर-कूकर, कीट-पतङ्ग आदि योनियोंमें या रौरवादि घोर नरकोंमें चले जाते हैं। (गीता ९। २०-२१) ॥ १० ॥

सम्बन्ध—ऊपर बतलाये हुए सांसारिक भोगोंसे विरक्त मनुष्योंके आचार-व्यवहार और उनके फलका वर्णन करते हैं—